सदगुरु

श्रीश्री निगमानन्द सरस्वती देव जी की

उपदेश रत्नमाला

प्रकाशक

दिल्ली सारस्वत संघ, नई दिल्ली

सद्गुरु

श्रीश्री निगमानन्द सरस्वती देव जी की

उपदेश रत्नमाला

प्रकाशक

दिल्ली सारस्वत संघ, नई दिल्ली

सद्गुरु श्रीश्री निगमानन्द सरस्वती देव जी की
उपदेश रत्नमाला

प्रकाशक : दिल्ली सारस्वत संघ, नई दिल्ली
© *संरक्षक : नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी*
संस्करण :
बांला में प्रथम — १९१८
ओडिआ में प्रथम — २०१६
हिन्दी में प्रथम — २०१७
हिन्दी में द्वितीय — २०१८
प्राप्तिस्थान :
१. नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी
सत्शिक्षा मंदिर ए—४, युनिट—९, भुवनेश्वर, ओडिशा—७५१०२२
ईमेल : nsspuri35@gmail.com
२. दिल्ली सारस्वत संघ
एन— २२—२५, हरगोविन्द एनक्लेव, छत्तरपुर, नई दिल्ली—११००६८
मुद्रण : quickdps@gmail.com
मूल्य: रु१०/— (दस रुपये) मात्र

Sadguru Shri Shri Nigamananda Saraswari Dev Ji ki
Upadesh Ratnamala

Publisher : Delhi Saraswat Sangh, New Delhi
© *Reserved by :* Nilachala Saraswata Sangha, Puri
Editions :
First in Bengali - 1918
First in Odia - 2016
First in Hindi - 2017
Second in Hindi - 2018
Available at :
1. Satsiksha Mandir
A-4, Unit-IX, Bhubaneswar, Odisha-751022
Email : nsspuri35@gmail.com
2. Delhi Saraswat Sangh
N-22-25, Hargovind Enclave, Chhatarpur, New Delhi-110068
DTP & Printed by :
Quick Digital Print Services : 9811359988, 8920836060
Price : Rs 10/- (Rupees Ten) only

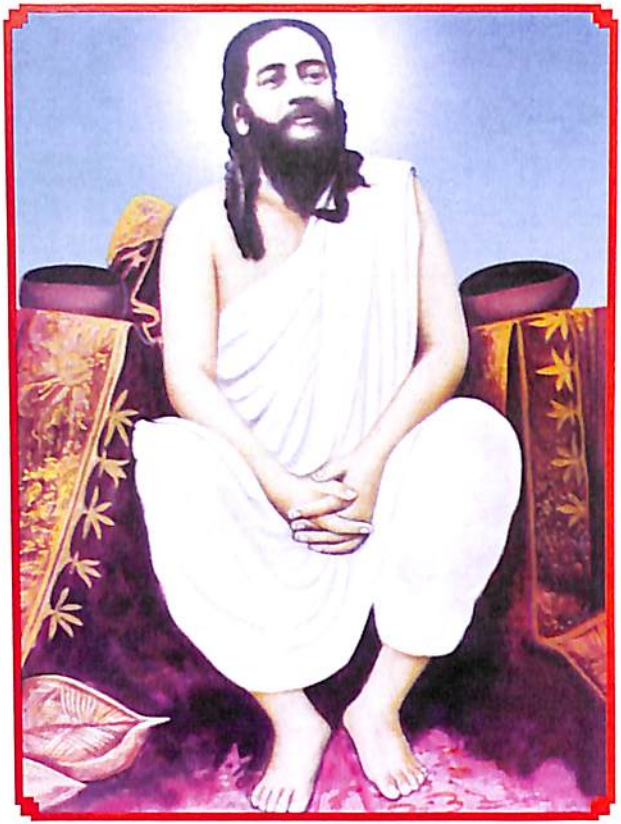

सदगुरु श्रीश्री निगमानन्द सरस्वती देव

उपदेश रत्नमाला

विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठा
१.	अपनी ओर से	७
२.	भूमिका	११
३.	कर्ममूलक उपदेशावली	१३
४.	ज्ञानमूलक उपदेशावली	३३
५.	भक्तिमूलक उपदेशावली	५८
६.	विविध उपदेशावली	७३

अपनी ओर से

नराकार परब्रह्मरूपायाऽज्ञानहारिणे।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्रीश्रीठाकुर निगमानन्द जी की कृपा से भक्तों के आग्रह को ध्यान में रखते हुए उनकी वाणी का हिन्दी अनुवाद इस 'उपदेश रत्नमाला' में प्रकाशित हुआ है।

मूल रूप से यह पुस्तिका सन् १९१८ में श्रीश्रीठाकुर जी के निदेश में उनके सन्यासी शिष्य स्वामी प्रेमानंद सरस्वती के द्वारा संपादित होकर वांला में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तिका के प्रकाशन

का उद्देश्य स्वामी प्रेमानंद सरस्वती के द्वारा लिखित 'भूमिका' में स्पष्ट किया गया है।

पुस्तिका में दी गई उपदेशावली चार अध्यायों में विभाजित है। पहला अध्याय 'कर्ममूलक' दूसरा अध्याय, 'ज्ञानमूलक', तीसरा अध्याय, 'भक्तिमूलक' और चौथा अध्याय, 'विविध उपदेशावली'। इन चारों अध्यायों में उल्लिखित हर उपदेश एक एक रत्न सदृश है, जो पुस्तक का नाम 'उपदेश रत्नमाला' की सार्थकता प्रतिपादन करते हैं।

सन् १९०८ में श्रीश्रीठाकुर जी द्वारा प्रतिष्ठित सनातन धर्म का मुखपत्र 'आर्यदर्पण' पत्रिका प्रकाशित होने के बाद उसमें श्रीश्रीठाकुर निगमानंद जी के उपदेशों को संगृहित कर प्रकाशित किया जाता था। उन उपदेशों का कुछ अंश इस पुस्तिका में प्रकाशित होने की बात

संपादक स्वामी प्रेमानंद सरस्वती ने 'भूमिका' में स्पष्ट की है।

श्रीश्रीठाकुर जी के भक्तों और पाठकों के द्वारा यह पुस्तक ऐसे समादृत हुआ कि वांला में इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीश्रीठाकुर महाराज ने १९३४ में उनके पवित्र शुभ जन्मतिथि अगस्त २४ तारीख के दिन ओड़िशा के कतिपय भक्तों का आग्रह और उनके प्रति प्रेमप्रीति भाव से विमोहित होकर जगद्गुरू के प्रेरणा से ओडिशा में नीलाचल सारस्वत संघ की स्थापना किये थे। ओड़िशावासी व ओड़िआभाषी भक्तों के आध्यात्मिक जिज्ञासा पूरणार्थ २०१६ में इस पुस्तिका का ओड़िआ भाषा में अनुवाद नीलाचल सारस्वत संघ के द्वारा किया गया था।

हिन्दीभाषी पाठकों के लिए श्रीश्रीठाकुर निगमानन्द सरस्वती देव जी के इस उपदेशावली

अपने आध्यात्मिक जीवन के पथ पर अग्रसर होने में सहायक सिद्ध होंगे— इस आशा में 'उपदेश रत्नावली' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया।

इस पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद तथा प्रकाशन में जो भक्त और प्रेस सहायता किए हैं उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए श्रीश्रीठाकुरजी के श्रीचरणकमल में प्रार्थना है।

श्रीश्री निगमानन्द स्मृति मंदिर
स्वर्गद्वार, पुरी, ओड़िशा
माघ पूर्णिमा, १०१७

श्रीश्रीठाकुरचरणश्रित

श्री संग्राम केशरी सिंह
सभापति व परिचालक
नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी

भूमिका

ॐ नमः श्रीश्रीगुरवे

'उपदेश रत्नमाला' प्रकाशित हुई इससे पहले यह सनातन धर्म का मुखपत्र 'आर्यदर्पण' में प्रकाशित हुई थी। इसके उपदेश 'सूत्र' की तरह संक्षिप्त होने के कारण साधारणतः दुर्बोध्य, लेकिन विश्लेषण करने पर गंभीर अर्थ निकलता हैं। जीव का स्वरूप माया से आच्छादित होने के कारण वह सत्य को जानने में अक्षम होता है। सत्य जानने के लिए किसी से उपदेश लेना आवश्यक हैं। किसी के उपदेश के बिना सत्य जानने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। यहाँ तक कि जगतस्रष्टा ब्रह्मा भी बिना उपदेश के सत्य नहीं जान पाते। सत्य जानने के लिए ब्रह्मा ने सौ साल तक अन्वेषण किया था,

फिर भी अन्वेषणीय वस्तु उन्हें नहीं मिली थी। उसके उपरांत ब्रह्मा भगवान विष्णु के उपदेशानुसार तपस्या करके सत्य जान पाए। इसी तरह इस संसार रूपी महारण्य में पथभ्रष्ट पथिक की मंजिल जानने के लिए ऐसे किसी उपदेष्टा का प्रयोजन है जिससे वह अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर कर सके। इसीलिए तत्वदर्शी सबके हित के लिए सरल, अमृतमय वाणी को प्रकाशित किया है, यह किसी के लिए दुर्लभ भी नहीं है।

यदि किसी तत्वलाभ की आकांक्षा करनेवालों को थोड़ा भी लाभ मिल जाए तो वह अपना सौभाग्य समझेगें और क्या विस्तार से कहें!

सारस्वत मठ — श्रीगुरुचरणाश्रित
अश्विन १० दिन, जिताष्टमी
साल १३२५ वंगाब्द — **स्वामी प्रेमानंद**

प्रथम अध्याय

कर्ममूलक उपदेशावली

१. मनुष्य तरह तरह की कामनाओं को लेकर अलग अलग देवताओं की आराधना करते हैं। जो ब्रह्मतेज के आशयी है वह वेदपति ब्रह्मा की उपासना करते है। ठीक इसी तरह इन्द्रियों की पटुता का आशय रखनेवाले ईन्द्र की, प्रजा की कामना करनेवाले दक्षप्रजापति की, सुख तथा सौभाग्य को चाहनेवाले देवी दुर्गा की, जीवन में तेज चाहनेवाले अग्नि की, धन के अभिलाषी वसु की, वीर्यकामी रूद्र की, भिक्षाभिलाषी अदिति की, स्वर्गकामी द्वादश आदित्य की, राज्य की अभिलाषा रखनेवाले

विश्वदेवों की, लम्बी उम्र की कामना करनेवाले अश्विनीकुमारों की,पौष्टिकता चाहनेवाले पृथ्वी की, पदभ्रंश निवारणार्थी अंतरीक्ष की, सौंदर्य को चाहनेवाले गंधर्व की, स्त्रीलिप्सु उर्वशी आदि अप्सराओं की, सकल क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमानेवाले परमात्मा की, यश की कामना करनेवाले यज्ञनामा विष्णु की, धन संचय करनेवाले वरुण की, विद्या के अभिलाषी गिरीशंकर की, दाम्पत्य प्रणय के आकांक्षी उमा की, धर्म को चाहनेवाले नारायण की, अधिक संतानों की प्राप्ति के लिये पितरों की, विघ्नविनाश के लिए यक्षगणों की, शरीर में शक्ति संचार के लिए देवताओं की, राजकार्य में उन्नति के लिए मनु आदि की, शत्रु विनाश के लिए राक्षस की, सुख–समृद्धि तथा भोग चाहनेवाले सोम की पूजा करते हैं। जीवन में वैराग्य की कामना करने वाले परम पुरुष श्रीविष्णु की पूजा करें।

२. जो लोग आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं, वह अपने अहं के ज्ञान से आत्मशक्ति पर निर्भर करते हैं। परिणामस्वरूप वे श्रीगुरु के चरणाश्रित तो नहीं होते, केवल अपनी इन्द्रियों और प्राण को वशीभूत कर इस संसार में तरंग के समान अत्यंत अशांत और चंचल मन को लेकर घूमते हैं। उसे संयमित करने की चेष्टा तो करते हैं लेकिन असफल होते हैं। वे लोग ठीक उसी तरह से हैं जैसे किसी नौका में नाविक के बिना हम चढ़ जायें। वहाँ उस समुद्र में हवा के कारण आनेवाली बाधांओं से जिस तरह नाव डगमगाती है, ठीक उसी तरह यह लोग भी अपने जीवन में अनेक मुसीबतों का सामना करते चलते हैं। जब समय आता है अपने दु:खों से डरकर इस संसार रूपी समुद्र में डूब जाते हैं।

३. इन्द्रियों को जैसे कड़े नियम श्रृंखला में बांधने की जरूरत है वैसे किसी जानवर को बांधने की जरूरत नहीं।

४. विषयी–लोग तीन विषय पर आक्षेप करके इहलोक परित्याग करते हैं। पहला, इन्द्रिय संभोग में तृप्त न होना, दूसरा, जितनी आशाएँ होती हैं उनका पूर्ण न होना और तीसरा, परलोक का पाथेय संचित न करना।

५. कौन जिम्मेदारियाँ असली और सही है? जब अपना हर कोन सी जिम्मेदारियाँ कार्य ईश्वर को समर्पित करके किया जाता है।

६. नियम यह है कि हम ईश्वर की पूजा करें और यही रास्ता है जिस पर चलकर हम उनका दर्शन कर सके।

७. अगर कोई अपना ऐश्वर्य तुम्हें अर्पण करते हैं तो उससे आप प्रफुल्लित न हो। अगर कोई गरीब व्यक्ति आपकी राह में मिलता है,

उससे आप दु:खी मत हो। आप ईश्वर का कार्य करते रहिए।

८. जिस तपस्या में 'मैं' नहीं, वही तपस्या ही यथार्थ है।

९. ईश्वर को हृदय में बसाकर संसार की नैया पार करें।

१०. यह मन जब तक सांसारिक सुख भोग को नहीं छोड़ता तब तक 'नाम कीर्तन' का रसास्वादन नहीं हो पाता।

११. जो भगवान से प्रेम और श्रद्धा रखते हैं उनका जीवन इस तरह होता है। यदि वे ईश्वर के अलावा दूसरी वस्तुओं के प्रति लालायित होते हैं या फिर ईश्वर को छोड़कर अन्य सांसारिक वस्तुओं का अन्वेषण करते हैं तो ऐसी स्थितियों में वह ईश्वर का उपहास करते हैं।

१२. मैं तुम्हें यह नहीं कहता कि तुम्हें वह काम नहीं करना, काम करना ही होगा। लेकिन तुम्हें यह समझना होगा कि **तुम स्वयं कार्य नहीं कर रहे हो, ईश्वर तुम्हारे द्वारा करवा रहे हैं।** जैसे साहूकार का नौकर उसके प्रदत्त धन से व्यापार करता है फिर मूलधन साहूकार को लौटाकर खाली हाथ लौट जाता है, ठीक उसी तरह मनुष्य को अपने कर्म करके खाली हाथ लौट जाना है।

१३. संसार की बनी वस्तुओं से मन को वापस लौटाकर सृष्टि के रचैयता के प्रति समर्पित करना ही **वैराग्य** है।

१४. उपासना करने से मनुष्य अपने स्वरूप से परिचित होता है। जो जिसकी उपासना करते हैं उनका मन भी क्रमशः उन्हीं में रम् जाता है, अंत में तत्सारूप्य की प्राप्ति होती है।

१५. फूल को अपना आदर्श बनाओ। फूल का स्वभाव है दूसरों को आनंदित करना, उसका

अपना कुछ नहीं होता, अपने आप खिलता है और मुरझा जाता है। देवता की सेवा में कोई आपत्ति नहीं, फिर विलासी के कमरे की शोभा बढ़ाने में भी कोई असंतोष नहीं। सेवा ही फुल का धर्म है।

१६. वाक्संयम के बिना चित्त का संयम कठिन है, वाक्संयम चित्तसंयम की पूर्वावस्था है।

१७. मन स्वाभाविक रूप से प्रवृत्ति पथ में दौड़ता है, साधना के माध्यम से उसे निवृत्ति मार्ग में वापस लाना चाहिए तब जाकर चित्त स्थिर होता है।

१८. साधन और भजन निर्दिष्ट स्थान में करना चाहिए तब जाकर उसी स्थान में धीरे धीरे शक्ति संचार होगा, क्रमशः ऐसा होगा कि उसी स्थान पर बैठते ही चित्त अपने आप स्थिर होने लगेगा।

१९. जमीन पर बैठकर योगसाधना करना उचित नहीं है क्योंकि उस समय शरीर में जो तड़ित

शक्ति उत्पन्न होती है, वहीं मिट्टी में मिल जाती है; इसीलिए आर्यऋषिगण चटाई या कम्बल आसन पर बैठकर योग साधना करने का उपदेश देते है।

२०. जिस समय मनुष्य पशुता या देवत्व की ओर अग्रसर होता है, वह संधिकाल यौवन का है, वह सर्वनाशा भी है। ऐसे में साहस और दृढ़ अध्यवसाय के साथ आसक्ति जैसे काँटेदार वाधविघ्नों को वीरों की तरह पददलित कर गुरु के दर्शाये हुए पथ पर अग्रसर न होने से सारा जीवन वज्राहततरु की तरह बीताना पड़ता है।

२१. अगर आप आदर्श मनुष्य जीवन प्राप्त करना चाहते हैं तो तामसी और राजसी वृत्तियों का दमन करते उनको अपना दास बनाकर, आज्ञावह बनाकर जीवन पथ पर अग्रसर होना होगा।

२२. आमोद प्रमोद में भी काम, क्रोध या मिथ्या का आश्रय न ले। जिसे कौतुहल से ही आप एक दो दिन आश्रय लोगे तीसरे दिन वह आपकी आदत या संस्कार में बदल जाएगा।

२३. अतीत के संस्कारों को पूरी तरह से मिटाना मुश्किल है, यह दो मुँहे जोंक की तरह, एक मुँह से पीछा छुड़ाओं तो दूसरे मुँह से जकड़ लेता है।

२४. स्वार्थी की तरह सिर्फ अपनी सुखसुविधा के पीछे मत भागो, दूसरों के कार्य के प्रति भी नज़र डालों।

२५. मन में अगर किसी प्रकार का उद्‌वेग हो तो प्रार्थना करो। मन ही मन ईश्वर का स्मरण करो, हर समस्या का निवारण हो जाएगा।

२६. गुरुवाक्य पर विश्वास रखो, उन पर सारा भार छोड़कर चैन से जीवन बीताओ, किसी भी प्रकार की विपत्ति तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकती।

२७. अपनी कमजोरी, असमर्थता से मुक्ति पाने के लिए अकपट और निश्चल चित्त में ईश्वर से प्रार्थना करो, उनकी कृपा से संसारमोह से मुक्त हो सकते हो, ज्ञान के दिव्य आलोक में प्राण शांत होगा।

२८. संसार के कार्य को इष्टदेव का कार्य समझकर संपादन करो तब जाकर वह बंधन न होकर मुक्ति का कारण बनेगा।

२९. साधना की प्रथमावस्था में कई बार अवसाद के पल आते है, उससे निराश होने से कैसे होगा? उत्साह, धैर्य और दृढ़ विश्वास ही साधना पथ का एकमात्र अवलंबन है। उसे छोड़कर आप कैसे आगे बढ़ोगे?

३०. चित्तशुद्धि न होने पर भगवद् उपलब्धि नहीं होती।

३१. अपना भाव और लक्ष्य निश्चित करके आप कोई भी कार्य करेंगे तो आपको सफलता जरूर मिलेगी।

३२. इंसान अपनी युवावस्था में जो भी कार्य करता है बुढ़ापे में उसी का फल भुगता है जैसे बैल दिन में जो भी घास खाता हैं रात को उसकी जुगाली करता हैं।

३३. जो भी कार्य करें उसमें 'अहं' की बू न हो। आपका हर कार्य विश्व के लिए समर्पित होना चाहिए, किसी न किसी को इसका फायदा होगा। उसमें मेरा कोई फायदा नुकसान नहीं है— यह भाव मन में सदैव हो।

३४. योगी भोगी हो सकता है लेकिन भोगी भगवद् कृपा के बिना योगी नहीं बन सकता।

३५. योग के माध्यम से गुणों का क्षय होकर चित्त की शुद्धि होती है। चित्तशुद्धि होने से ईश्वर की विमल ज्योति अपने में प्रतिबिंबित होती है।

३६. बिना बोले गुरु की आज्ञा का पालन करना शिष्य का कर्त्तव्य है।

३७. योग–यज्ञ भी तब मुक्ति का कारण न होकर बंधन का कारण होता है जब उसमें अहंकार का भाव प्रतिध्वनित होता है।

३८. जीव अहंज्ञान में लिप्त होकर कर्म करने के कारण ईश्वर से दूर हो जाता है।

३९. साधना चार प्रकार की हैं– फूल, बेल पत्ता आदि उपकरणों से प्रतिमा पूजा शुद्र भाव की साधना है, जीवसेवा – जैसे तृषार्त्त को जलदान, क्षुधार्त्त को अन्नदान आदि वैश्यभाव की साधना, आततायी के कब्जे से निरीह जनताओं की रक्षा क्षत्रीयभाव की साधना और अज्ञान को ज्ञान देना ब्राह्मण्य भाव की साधना है।

४०. जिसका चित्त जितना स्थिर है, भूत और भविष्य की जानकारी उनको उतनी अधिक है।

४१. नाम स्फुरण न होने पर नामरहस्य के बारे में कोई नहीं समज सकता। नाम के विकास के

लिए नाम ग्रहण तथा निर्जन स्थान में शांत चित्त से नाम जप करना होगा।

४२. नाम जपते जपते ईश्वर से प्रेम होता है।

४३. नाममाहात्म्य समझने पर ही निद्रा, तंद्रा, जड़ता और आलस्य दूर होते हैं।

४४. जब नाम लेते हुए अपना अहं भूल जाओगे– 'मेरा' कहने के लिए अपना कुछ नहीं रहेगा, तब जाकर सच्चा नाम लेना कहा जायेगा।

४५. संतान पालन से ही नारी की सन्याससाधना शिक्षा होती है।

४६. सन्यासी भगवान पर निर्भर करते हैं, वह कभी भी आत्मनिर्भर नहीं होते।

४७. अगर अमर होना चाहते हो, जीवत्व पर शिवत्व की प्रतिष्ठा करना चाहते हो तो जीवित–मृत बनो।

४८. मिट्टी के शरीर को मिट्टी में मिल जाना है फिर इस शरीर को लेकर इतना

अहंकार क्यों? मिट्टी में मिलने से पहले, हमारा अहंकार भाव हर विषय के बारे में क्यों नहीं मिट्टी बन जाता?

४९. सांसारिक संघर्ष के बिना कर्मफल छिन्न नहीं होता।

५०. हिन्दू का विवाह भोग विलास के लिए नही, सांसारिक अनिवार्यता ही है।

५१. अगर आदर्श गृहस्थ बनना चाहते हो तो भोग विलास में डूबकर दाम्पत्य जीवन का अपव्यवहार न करें । सन्यासी से भी कठोर जीवन शैली अपनाकर अनमोल मनुष्य जीवन की सार्थकता संपादन करें।

५२. सफर की दूरियाँ देखकर बैठ जाने से कभी भी मंजिल तक नहीं पहुँच सकते, पीछे न मुड़कर आगे बढ़ते जाओ, सफलता जरूर मिलेगी।

५३. कोई भी कार्य करते समय कामना या वासना की भावना हृदय को विचलित करती है, इसीलिए हृदय में कामना या भावना रखकर कोई भी कार्य न करें।

५४. अगर सत्वगुणसंपन्न होना चाहते हो तो आलस से अपना जीवन न बीताओ, आलसता से जीवन में तमोगुण बढ़ जाता है।

५५. संसार में कार्य करते समय भी भगवत प्रेम में विभोर रहा जा सकता है।

५६. सत्य और सरलता ही धर्म का असली आभूषण है। जीवन की अंतिम सांस तक उसे न त्यागे।

५७. सत्य के सहारे ईश्वर पर भरोसा रखकर जीवन की राह में आगे बढ़ो, चाहे कितनी भी मुश्किलें आये सदैव आपकी विजय होगी।

५८. निरवलंब ध्यान सन्यासी के लिए है, मन को सपूर्ण अवलंबन शून्य करके रखने से

ही सत्य की उपलब्धि हो सकती है। क्रमशः उसके निकट ही सत्य लहरायेगा।

५९. आँख बंद करते ही हम जिस अंधकार को देखते हैं वह निरवलंब की स्थिति है। इसे हम अपनी स्वाभाविक स्थिति भी कह सकते हैं। पर साधारण रूप से हमें ऐसी स्थिति आसानी से नहीं मिलती, क्योंकि निरबच्छिन्न अंधकार हमें दिखाई नहीं देता। कामना, वासना तथा चिंता की लहरें बार बार इस अवस्था या स्थिति को नष्ट कर देते हैं।

६०. साधक के लिए ध्यान की अवस्था ही सही है। ध्यान तथा ज्ञान दोनों पथ पर ध्येयवस्तु एक ही है। इसमें हमें संपूर्ण रूप से अपने चित्त को लीन रखना होगा और बाधक बनें सभी तथ्यों का अग्राह्य करना होगा।

६१. सोचने भर से हम विश्व के किसी भी अंश में उपस्थिति हो सकते हैं, लेकिन स्थूल शरीर में बंधे होने के कारण इच्छानुसार वह नहीं कर सकते।

६२. सूक्ष्म से भी कारणावस्था में और अधिक दर्शन व अनुभूति होती है, कारण जितना उच्च स्तर के उपलब्धि होती है, दर्शन और अनुभूति में उतनी वृद्धि होगी।

६३. अगर जीवन की परीक्षाओं में सफल नहीं हो पाये तो विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने से क्या होगा? जिस अँधेरे में भटक रहे थे उसी में भटकते रहोगे।

६४. जो मनुष्यगुरु और ईश्वर के आदेशानुसार परार्थ में जीवन न्योछावर करते हैं उन्हें अभिमान त्याग कर परिणाम के बारे में न सोचकर कायमनोवाक्य में निर्लिप्त रूप से कर्म करना चाहिए।

६५. चाहे जंगलों के जानवरों के साथ वास करो, लेकिन दुराचार व्यक्तियों की संगति उचित नहीं।

६६. जीव सेवा, साध्यानुसार परोपकार– इस प्रत्यक्ष धर्म के त्याग से आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

६७. अगर सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हो और अपने स्वरूपावस्था का लाभ करना है तो ईश्वर पर आस्था रखकर अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढ़ो। सत्य लाभ अवश्य होगा।

६८. जब तक इस संसार में हो, किसी को आघात न पहुँचाये, अगर कोई आघात करना चाह रहा हो तो उसके निवारण के लिए प्रयत्न करो। कर्त्तव्य पालन न करना कमजोरी है, पाप है।

६९. यदि ईश्वर की स्थिति को समझना चाहते हो तो सभी प्रकार के दु:ख–दर्द, रोग, शोक के बीच ही आनंद में रहने का प्रयत्न करो।

७०. मुक्तावस्था जीव की स्वाभाविक अवस्था है, इसे प्राप्त करने में कोई मुश्किल नहीं, सिर्फ गुरु के वचनों पर भरोसा कर उनमें आत्मसमर्पण करने से कोई भी समझ सकता है कि वह जीवनमुक्त है।

७१. सेवक बनना कोई मजाक की बात नहीं। इस संसार में एकमात्र ईश्वर ही सेवक का

आदर्श है। इसीलिए सेवकत्व प्राप्त करने के लिए मान, अपमान, हिंसाद्वेष, आत्मीय परिजन–यहाँ तक कि अपने अहंत्व को भूलकर दूसरों के लिए जीवन न्योछावर करना होगा।

७२. कर्मक्षेत्र पर कदम रखने के बाद अब अच्छे–बुरे के बारे में मत साचो, कर्म में प्रवृत्त होने से पहले ही सोचना चाहिए। इसीलिए कहते हैं कि प्रतिज्ञा करने से पहले ही सोचा होता।

७३. इम्तिहान में सफल होने वाला व्यक्ति ही बड़ा है।

७४. आप इस संसार में कर्म करने आये हो, **अनासक्त भाव से अपना कर्म करो, यही पूर्णत्व का लक्षण है।**

७५. यह शरीर मेरा नहीं है, सफर में मिला हुआ धन जैसा है। जितना हो सके कर्म करते हुए उसका सद्व्यवहार करो। कौन जाने कब जिसकी संपत्ति है वह वापस ले जाए!

७६. एक बार शरीर को कड़ी मेहनत करने पर मजबूर करो वह भय से आपके पास नहीं आएगा, आप शरीर ज्ञान से मुक्त हो जाओगे।

७७. आपसे जो नीच अर्थात् पतित है उसका दायित्व आप संभालो, उसको राह दिखाओ, तब जाकर तुम्हारा महत्व और उच्चत्व प्रतिपादित होगा।

७८. जीव का जीवत्व स्वाभाविक और देवत्व अस्वाभाविक है। इसीलिए जीवत्व के स्थान पर देवत्व की प्रतिष्ठा करना मानव जीवन का लक्ष्य है। हमारे मन में उपजनेवाले क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध आदि भाव स्वाभाविक है लेकिन दया, भक्ति, प्रेम आदि भाव को मन में लाने के लिए कठिन प्रयत्न करना होता है।

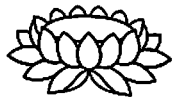

द्वितीय अध्याय

ज्ञानमूलक उपदेशावली

१. नित्यानित्य वस्तु के पार्थक्यबोध का नाम **'विवेक'** है। नित्यानित्य वस्तु के विचार के द्वारा अनित्य वस्तु के परित्यागपूर्वक नित्यवस्तु अन्वेषण का नाम **'वैराग्य'** है। अनित्य वस्तु परित्याग करने पर नित्यवस्तु की प्राप्ति के लिए जीवन की एकांतिक आकांक्षा का नाम **'अनुराग'** है।

२. सुख–दुःख, संपद–विपद, सर्दी–गर्मी, आहार–अनाहार, मान–अपमान आदि के द्वन्द्व में विचलित न होकर धीरे धीरे लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का नाम **'तितिक्षा'** है। रूप, शब्द, स्पर्श, गंध आदि इंद्रियप्रिय

वस्तु से मन को दूर रखकर ईश्वर का नाम–गुणादि, श्रवण–कीर्तन में निमग्न रहने का नाम **'उपरति'** है।

३. श्रीगुरु, महापुरुष और शास्त्रवाक्य में आस्था का नाम **'श्रद्धा'** है। सभी प्रकार के बाह्य विषय का परित्याग कर जब ईश्वर के प्रति मन में एकाग्रता होती है तो उसे **'समाधान'** कहा जाता है।

४. ईश्वर के अलावा इस संसार में जो कुछ भी है उस सबसे विच्छिन्न होना ही **ईश्वर के करीब होने का लक्षण है।**

५. संपद की ओर न देखकर, संपददाताओं के प्रति दृष्टि दें, इसी का नाम ही **'कृतज्ञता'** है।

६. एक साधुपुरुष सांयकाल में पूजा के लिए मंदिर में प्रवेश कर रहे थे। इसी समय सामने से एक सुंदर रमणी दिखाई दी। साधुपुरुष ने रमणी को संबोधित करते हुए

कहा– ''सुंदरी! आप किसके प्रेयसी हैं? और किस उद्देश्य से यहाँ आई हो?'' रमणी ने मुस्कुराते हुए कहा, ''दूर से आपको साधु वेश में देखकर 'उन्नत' सोचा था, पास आने पर लगा कि आप 'ज्ञानी' और करीब आने पर लगा 'ईश्वरदर्शी' है, लेकिन अब समझ में आया कि आप न तो उन्नत हैं, न ज्ञानी है और न ही ईश्वरदर्शी।'' साधुपुरुष ने कहा, ''आपने कैसे समझा?'' उन्होंने कहा आप ''उन्नत'' होते तो अंगसंस्कार नहीं करते, 'ज्ञानी' होते तो पराई नारी की ओर न देखते, 'ईश्वरदर्शी' साधु होते तो ईश्वर के अलावा दूसरी वस्तुओं की ओर आपकी नजर नहीं दौड़ती।''

७. जिसके मन में काम की प्रवृत्ति प्रबल हो उसे विवाह करना चाहिए, जिससे किसी संकट में पड़ने की संभावना न हो।

८. मैंने उनके अस्तित्व की ओर देखा, उन्होंने मुझसे मेरा अस्तित्व दूर कर दिया। अनंतर मैंने अपने अनस्तित्व की ओर देखा। उन्होंने अपने अस्तित्व से मेरे अनस्तित्व को प्रकाशित किया।

९. माया के कारण जैसे इंसान संतान और संपत्ति को अपना आत्मस्वरूप मानता हैं, उसी तरह यह शरीर आत्मस्वरूप में एक होने पर भी इसके द्रष्टापुरुष इससे पृथक् प्रतीयमान हैं। जिस तरह जलीहुई लकड़ी और उससे उत्पन्न धुआँ आग की तरह लगने पर भी वाहक और प्रकाशक अग्नि इस धुआँ और जली हुई लकड़ी से पृथक् प्रतीत होते हैं। वैसे ही इन्द्रिय, अंत:करण और जीव–सभी से 'द्रष्टा–आत्मा' अलग हैं। इसके अलावा 'जीवसंज्ञितआत्मा' से 'ब्रह्मसंज्ञितआत्मा' पृथक् है। इसी तरह मूल की अपेक्षा प्रवर्त्तक ईश्वर भी पृथक् हैं।

१०. ज्ञान के दो भाग हैं – वाह्यिक और आध्यात्मिक। वाह्यिक भाग वाह्यज्ञानी प्रकाश करते हैं और आध्यात्मिक भाग आध्यात्मज्ञानियों प्रकाश करते हैं। ईश्वर के साथ जो मधुर व निगूढ़ रिश्ता है वही आध्यात्मिक भाग है, वहाँ मानवीय भाव का प्रवेश नहीं।

११. आपने ईश्वर को कहाँ देखा? जहाँ अपने 'स्वयं' को देखा नहीं।

१२. निष्काम व्यक्ति का कभी भी पतन नहीं होता। 'काम' में प्रवृत्त व्यक्ति का तत्काल पतन होता है।

१३. किसका संग सार्थक है– जिसके अंतरात्मा में 'तू' और 'मैं' नहीं।

१४. कोई कोई तत्व–जिज्ञासा को ही धर्म जिज्ञासा कहते हैं, लेकिन वैसा नहीं। अद्वय ज्ञान को ही 'तत्व' कहते हैं, उसी तत्व के

अपने अपने मतानुसार कई नाम हैं, जैसे– वेदज्ञों ने उसे 'ब्रह्म', हिरण्यगर्भोपासक उन्हें 'परमात्मा', तथा भगवद् भक्त उन्हें 'भगवान' कहते हैं।

१५. अनुमान या कल्पना के द्वारा ईश्वर को समझा नहीं जा सकता। अगर आप कहते हैं कि आपने ईश्वर को पहचाना है तो मैं कहूँगा कि उन्हें न आपने समझा है और न ही पहचाना है। ईश्वर को आपने जितना समझा है उतना कहना कि मैं उन्हें कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि वह अनंत स्वरूप है।

१६. ईश्वर आपके करीब भी हैं और दूर भी अर्थात् जिस रूप में आप उन्हें समझों वह आपको उसी रूप में मिलेंगे।

१७. जब भरी सभा में दुःशासन ने द्रोपदी का वस्त्र खींच रहा था तब चारों ओर से हताश होकर द्रोपदी ने श्रीकृष्ण को पुकारा था, 'हे

मधुसूदन! हे दीनबन्धु!' श्रीकृष्ण ने द्रोपदी की लाज रखी। द्रोपदी ने जब श्रीकृष्ण से शिकायत की 'मैंने आपको इतनी आवाज लगाई, आप तो अंतर्यामी है फिर भी क्या आपको मेरी आवाज सुनाई नहीं दी, जो आपको आने में इतनी देर लगी?' श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, ''द्रोपदी! तुमने सोचा कि मैं बहुत दूर हूँ, इसीलिए इतनी ऊँची आवाज में मुझे पुकार रही थी। जिनको लगता है मैं उनसे दूर बैठा हूँ उनके पास आने में मुझे विलंब होता है और जिनको लगता है कि उनका हृदय ही मेरा निवास स्थान है वह कभी भी मुझसे दूर नहीं होते।''

१८. ईश्वर के स्मरण–मनन मात्र से ही जिनकी स्मृति समस्त पदार्थों से दूर होती है उनके लिए ईश्वर सभी पदार्थों में विद्यमान है।

१९. तत्वज्ञान प्राप्त होते ही आत्मस्वरूप ईश्वर से साक्षात्कार होता है, इसके बाद अहंकार रूप

हृदयग्रंथि अपने आप हट जाती है और मन के सारे संशय मिट जाते हैं। इसके साथ ही जन्मांतरीण सुकृति–दुष्कृति हेतु प्रारब्ध भोग के सारे कर्म जो परवर्त्ती काल में भोगतना पड़ता है वह पूरी तरह समाप्त हो जाता है।

२०. 'मैं' तब चरितार्थ होता हूँ 'जब आपके जीवन में 'मैं' अपनें अलावा दूसरे किसी को नहीं देखता। स्मरण–मनन में सिर्फ 'मैं' ही आपके दिल में रहता हूँ ।'

२१. अपना 'आत्मस्वरूप' ज्ञात होना ही सच्चा ज्ञान है।

२२. ईश्वर को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए। इस मृत्युलोक में सिर्फ सांस लेना, आहार–. विहार या मनोरंजन करना जीवन का उद्देश्य नहीं है। कुम्हारशाला के हवायंत्र से क्या सांसों की आवाजाही नहीं होती? क्या जानवर

वृणभोजन या सहवास नहीं करते? उनके जीवन का क्या नतीजा होता है?

२३. मनुष्य को जब लगता है कि वह सब कुछ जानता है अपने अहंज्ञान के कारण उसमें स्पर्धा होती है। लेकिन जब उसे यह अहसास होता है कि वह कुछ नहीं जानता और अपनी अज्ञानता को जानकर वह लज्जित महसूस करता है, उसी क्षण वह ज्ञानार्जत के लिए सक्षम होता है।

२४. ईश्वर का ऐसे स्मरण करो जैसे आगे स्मरण करना नहीं होगा अर्थात् वो ईश्वरत्व कभी विस्मृत ही न हो, तब जाकर आपको पुनर्वार स्मरण करने की जरूरत नहीं होगी।

२५. स्वयं को ईश्वर में देखने से **'पूर्णता'**, ईश्वर को स्वयं में देखने से **'निर्वाण'**, स्वयं को न देखकर ईश्वर को देखने से **'नित्यता'** की प्राप्त होती है।

२६. अपना जीवन ईश्वर को समर्पित करने से आपका **'स्व'** निर्वासित होगा, वह तुम्हें अपना जीवन दान देंगे।

२७. जब तक मनुष्य में अहंज्ञान है उसमें आत्मनिर्भरता नहीं आती। जब अहंज्ञान मिट जाता है भगवद्निर्भरता आने लगती है।

२८. जब ईश्वर में ही समुदाय व्यक्तियों की स्थिति और गति देखी जाती है, उसे 'दर्शन' कहा जाता है।

२९. जिसे यह अहसास है कि ईश्वर सर्वव्याप्तिमान है वह कभी भी पाप कार्य में लिप्त नहीं हो सकता।

३०. जिनकी स्थिति और गति समरूप में है वह सत्पुरुष है।

३१. तीन विषयों में मनुष्य की पूर्णता संभव है–

(क) जो किसी दूसरे को नहीं जानता लेकिन स्वयं को अच्छी तरह पहचानता हो जैसे ईश्वर उन्हें पहचानता है।

(ख) उनसे ही तुम्हारी स्थिति है और तुमसे ही उनकी स्थिति है।

(ग) आपका अपना कुछ नहीं है सब कुछ ईश्वर का है।

३२. किसी के कार्य की समालोचना न करें, माना जाता है कि ऐसा करना जैसे ईश्वर के गुण–दोषों का विचार करना।

३३. मनुष्य जीवन जैसा अनमोल निधि प्राप्त करने के बाद कामना और वासना में लिप्त रहकर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट न हो, परमपद से भ्रष्ट न हों।

३४. जिन्होंने मुश्किलों में डाला है वही उससे उबारने की राह दिखायेंगे – इसी भरोसे के साथ परिस्थिति के अनुरूप खुद को ढालना ही मनुष्य जीवन का परम कर्तव्य है।

३५. चापलूसी या खुशामदी से ईश्वर को नहीं अपनाया जाता। कोमल या कठोरता युक्त भरे शब्दों में वह कोई अंतर नहीं देखते

क्योंकि वाक्चातुर्यता का उन पर कोई असर नहीं होता। वह तो भावग्राही है। भाव को ही पहचानते हैं।

३६. ब्रह्मंत्व की उपलब्धि के लिए पहले पशुत्व को त्याग कर मनुष्यत्व प्राप्त करना होगा, फिर देवत्व का लाभ और क्रमशः ईश्वरत्व लाभ करना होगा। इसके उपरोत साधना के चरम स्तर ब्रह्मंत्व की प्राप्त होती है।

३७. चाहे आप संसारी हो या सन्यासी अगर जीवन का लक्ष्य स्थिर नहीं है तो सफलता आपसे कोसों दूर है।

३८. सत्य की राह पर चलनेवालों से अगर कभी कोई गलती होती है तो उसे सुधरा भी जा सकता है।

३९. मन के नीचले स्तर पर तरह तरह के भेद विद्यमान है, जितना उपर उठने की कोशिश करोगे भेदाभेद दूर होकर चित्त शांत होगी।

४०. कामना ही दु:ख का मूल कारण है। कामना के नाश में ही से दु:ख का नाश और सुख की प्राप्ति संभव है।

४१. विचार का अर्थ तर्क करना नहीं, संशय दूर करना है। विचारों के द्वारा इंसान किसी भी तथ्य के तह तक पहुँचने में सक्षम होता है, मन में कोई उद्‌वेग नहीं रहता, एकदम शांत अवस्था में पहुँचने में सक्षम होता है।

४२. इंसानों में जब और जिस वृत्ति का प्राबल्य होता है देह और मन में भी उसी के अनुरूप प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। क्रोध आने से जैसे चेहरे पर उसका प्रभाव नजर आने लगता है उसी तरह मन प्रफुल्लित होने से चेहरे पर उसकी झलक दिखाई देती है।

४३. जिसके मन में सदा संतोष का भाव है अर्थात् सर्वावस्था में जो तृप्त है असल में वही सबसे सुखी है।

४४. सांसारिक उलझन में इंसान इतना फँसा होता है कि दु:ख ही उसके हाथ लगता है। वह समझ नहीं सकता कि अनित्य के साथ हमारा कोई संबंध नहीं हो सकता– नित्य के साथ ही सदैव हमारा रिश्ता है।

४५. भय का कारण ही मृत्यु है। चाहे जिसके लिए भी आप भयभीत हो, उसके मूल में मृत्यु का भय है।

४६. बाघ या सांप से क्यों डर लगता है? क्योंकि उनके काटने से मौत हो सकती है। जेसने मृत्यु पर विजय हासिल कर मृत्युंजय बना है, उसका ही भय दूर हुआ है।

४७. कुछ माँगना ही अपराध है– अनायास ही जो आपको मिला है, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए।

४८. मनुष्य तुच्छ और ससीम है जबकि ईश्वर अनंत और असीम। जप और तप के बल

पर उनको पाना असंभव है। ईश्वर की कृपा के बिना उन्हें पाना नामुमकिन है।

४९. जिन्होंने ईश्वर को पहचाना है, उन्हें महसूस किया है वही उनके बारे में बता सकता है। जिसने कभी लड्डू नहीं खाया वह उसका स्वाद कैसे बता सकता है?

५०. 'गुरु' का अर्थ 'भारी' है। जिससे और कुछ बड़ा नहीं वही गुरु है। 'गुरु' ही ब्रह्मस्वरूप है। **भक्तों के लिए गुरु ही ईश्वर** है। क्योंकि वह सभी को स्वयं से श्रेष्ठ मानता है। उसके लिए गुरु ही ईश्वर है इसमें जरा–भी संदेह नहीं। इसके अलावा **ज्ञानी के लिए गुरु ही ब्रह्म है** क्योंकि उनका मानना है कि **विश्व की हर सृष्टि ब्रह्म का ही विकास है**। इसीलिए गुरु ही ब्रह्म है।

५१. गुरु भाव है और शिष्य अभाव। जब तक अभाव या कमी रहेगी तब तक गुरु–शिष्य

का रिश्ता भी सही रहेगा। जब गुरु की कृपा से सारा अभाव मिट जायेगा, तब गुरु और शिष्य के बीच कोई भेद न रहेगा। शिष्य भी गुरु में तब्दील हो जायेगा।

५२. अभाव से ही मन में आग्रह पैदा होता है। जिसका कोई अभाव नहीं उसमें किसी के प्रति कोई आग्रह भी नहीं होता। लेकिन यह बात ब्रह्म के संबंध में लागू नहीं, क्यों कि जो पूर्णब्रह्म सनातन है, उनकी इच्छा 'अभाव नहीं, यह ब्रह्म का स्वभाव है। क्योंकि त्रिविध शक्ति (इच्छा, क्रिया, ज्ञान) ब्रह्म की ही परिणति है और यह उनमें ही प्रतिष्ठित है।

५३. सच कहे तो आँख और मन न कुछ देखता है और न ही अहसास करता है। आत्मा ही इन सबके आधार से दर्शन करती है।

५४. स्थूल में जो दिखाई देता है सूक्ष्म में उससे ज्यादा देख सकते हैं। यहाँ तक कि सूक्ष्म के

साथ स्थूल की कोई तुलना नहीं कर सकते। स्थूल शरीर होने की वजह से हम संसार के कुछ ही अंश देखने में सक्षम है।

५५. भाव का अर्थ पूर्णत्व है। अभाव का विपरीत ही भाव है। जब तक अभाव रहेगा तब तक भाव का कोई स्थान नहीं अर्थात् जिसमें भाव है उसे कोई अभाव नहीं। भाव बहुत ही उच्चावस्था है।

५६. प्राणजय और इन्द्रियजयपूर्वक सत्वशालिनी बुद्धि के द्वारा मन को आत्मवश किया जा सकता है। जैसे अश्वधावक कमजोर अश्व के हृदय की बात समझ सकता है, उसी तरह अनुवृति मार्ग के द्वारा विचलित मन को वश में करना ही परम योग है। जब तक मन निश्चल नहीं हुआ है तब तक तत्व. विवेक के द्वारा अनुलोम विलोम क्रम से सभी पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश का चिन्ता करें। जो संसार प्रति वितृष्ण, वह उस कारण

से गुरूपदेश का पुन: पुन: चिन्तन से देहादि अभिमान परित्याग करते हैं।

५७. आशा बंधन का कारण है। जब मन में कुछ पाने की आस होती है तो सोचना होगा कि मन में बंधन का कारण जगी है। वर्तमान में जीना ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। बीते हुए कल के बारे में आलोचना करने से कोई फायदा नहीं। भविष्य में क्या होगा उसके बारे में सोचकर परेशान होने से भी क्या फायदा, जो होना है वह होकर ही रहेगा।

५८. ईश्वर ही इस संसार के सबसे बड़े सेवक हैं, जो सभी की समान रूप से सेवा कर रहे हैं। जिसको जो आवश्यकता है ईश्वर ने पहले ही उसका बंदोबस्त करके रखा हैं? जिसे पहचान पाना जीव के द्वारा कभी भी संभव नहीं। इसीलिए आसन्न भविष्य के बारे में सोचकर परेशान होने से कोई फायदा नहीं।

५९. जो जिस रूप में ईश्वर को चाहता है, वह उन्हें उसी रूप में मिलते हैं। कभी–कभी जीव आत्मसुख की कामना से अपने मन मुताबिक ईश्वर प्राप्त करना चाहता है ऐसे व्यक्ति खुद ही प्रताड़ित होते हैं, ईश्वर का स्वरूप उन्हें प्राप्त नहीं होता।

६०. अभाव ही जीव का एकमात्र अशांति और दु:ख का कारण है। सच कहें तो मनुष्य के लिए किसी चीज की कोई कमी नहीं, अज्ञानता ही सारे अभावों की सृष्टिकर्त्ता है।

६१. समस्त सृष्टपदार्थ मात्र पूर्णब्रह्म का अंश है, अत: वह अपूर्ण है। इसीलिए अपूर्ण वस्तु को प्राप्त करके भी पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे कि विष्णुत्व और शिवत्व का प्राप्त करके भी परा शांति के अधिकारी नहीं हो पाते, क्योंकि विष्णुत्व और शिवत्व भी सृष्ट है।

६२. आत्मस्वरूप लाभ करने पर संसार के नियम जीव के समझ में आते हैं। चाहे धरती पर

कितनी ही आश्चर्यचकित घटनाएँ देखने को मिले लेकिन उस पर कुछ असर नहीं होता। वह अचल, अटल है। तब वह पूर्णशांति का अधिकारी होगा।

६३. अभाव की कमी जिसको जितनी है, उसे उतनी ही शांति है।

६४. शिष्य चाहे दूर हो या करीब वह कभी भी अपने गुरु की शुभदृष्टि से दूर नहीं होता।

६५. चित्त और आनंद या ज्ञान और भक्ति जीव की स्वाभाविक संपत्ति है। स्वरूपावस्था अनुसंधान द्वारा पता नहीं चलता, सिर्फ साधना के द्वारा अच्छे और बुरे पलों में समभाव में रहने पर अपने आप ही स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है।

६६. सुख और दुःख माया का ही खेल है। जब तक लोभ और मोह का इंधन जलता रहेगा आग नहीं बूझेगी।

६७. ज्ञान की प्राप्ति के लिए साधु की संगति का प्रयोजन है। अगर आप मायामोह के जाल में फँसे रहोगे तो साधु की संगति का क्या फायदा?

६८. बाहरी विद्या के बल पर चाहे आप संसार में स्वयं को कितना ही सज्जन या पंडित का परिचय दो लेकिन आत्मविश्लेषण करके देखो कि आप कहाँ तक बंधन मुक्त हो?

६९. एक निर्दिष्ट बिन्दु पर गुरु को सीमाबद्ध करके न रखो, वह अखंड विश्व में सर्वव्याप्त है। जब आपको यह अहसास होगा तब गुरु की प्राप्ति होगी।

७०. अहंत्व को स्थूल शरीर के साथ जोड़कर मत देखो, नहीं तो जड़ बन जाओगे।

७१. जड़ या माया + चैतन्य = सृष्टि।

७२. ज्ञान की प्राप्ति करने की इच्छा मनुष्य की स्वाभाविक प्रक्रिया है। अंधेरे कमरे में

उगनेवाला पौध रोशनी की तलाश में खिड़की या दरवाजे की फांक से बाहर निकलने के लिए बेचैन हो उठता है। अबोध शिशु में भी हर बात को जानने की उत्कंठा होती है।

७३. हृदय में अगर सत्य के प्रति निष्ठा है, तो न्याय की बात करने में भय नहीं होता क्योंकि जो सत्य के बल पर मजबूत इरादेवाले हैं ईश्वर उन्हीं का साथ देते हैं, सत्य ईश्वर में ही प्रतिष्ठित है।

७४. ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं। सिर्फ भेद यह है कि जीव खाद मिला हुआ सोना और ईश्वर खरा सोना जैसा है। जीवों में भी आपस में अंतर दिखाई देता है, जैसे कोई थोड़ा सा खाद मिला हुआ तो कोई ज्यादा खाद मिला हुआ। इसीलिए संसार में आपस में इतने अंतर दिखाई देते हैं।

७५. सुनार जैसे पदार्थ विशेष के उपयोग से आग में तपाकर खाद मिला हुआ सोना को

खरे सोने में परिवर्तित करता है उसी तरह सद्गुरु की कृपा से ज्ञान की अग्नि में तपकर कामना वासना या अविद्या की खाद से निकलकर जीव ब्रह्म में परिवर्तित हो सकता है। यही मोक्षलाभ है।

७६. द्वैतभाव जीव की स्वाभाविक अवस्था है। इसीलिए सुख–दुख, सत्–असत्, लाभ–हानि, अच्छाई–बुराई का विचार आता है।

७७. 'ज्ञानात् संजायते मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान ही मुक्ति की प्राप्ति का उपाय है।

७८. भोजन से पेट की परितृप्ति होती है। लेकिन मन की परितृप्ति कभी नहीं हो पाती, जो जीव के दुःख का कारण है।

७९. 'ज्ञान' का अर्थ ईश्वर को पहचानना है। अगर ज्ञान की प्राप्ति चाहते हो तो प्रकृति का अध्ययन करो। संसार के एक एक पदार्थ में अनंत ज्ञान का भंडार है। इंसान तो दूर की

बात है, वृक्ष के साधारण से पत्ते में भी अनंत ज्ञान का परिचय मिलता है।

८०. इंसान अहंकार से भरकर अपने तरीके से संसार का मूल्यांकन करना चाहता है। इसीलिए साधारण–सा इंसान तो दूर की बात है साधु संतों में भी वह कमियों और कमजोरियाँ ढूँढ़ता रहता है। एक बार भी वह यह नहीं सोचता कि उसकी विद्या–बुद्धि की दौड़ कहाँ तक है! जो आज तक अपने आपको नहीं समझ सका दूसरों का मूल्यांकन करना क्या उसकी धृष्टता नहीं है?

८१. दूसरों की हत्या करने के लिए कितने हथियारों का प्रयोजन होता है लेकिन आत्महत्या सामान्य से चाकू द्वारा ही संभव है।

८२. दूध से उसकी सफेदी जैसे अभेद और अभिन्न तथा अग्नि और उसकी दहिकाशक्ति जैसे अभेद है वैसे ही प्रकृति और पुरुष भी अभेदात्मक है।

८३. अनंतकोटि विश्वब्रह्मांड का रूप जो परिवर्तनशील है और उसकी एककालीन लय जैसे संभव नहीं वैसे ही ईश्वर भी संपूर्ण निर्गुणावस्था कभी प्राप्त नहीं होते।

८४. समस्त विश्व में प्रतीयमान होने पर भी सूर्य जैसे विशेष स्थल पर अवस्थान करते हैं उसी तरह ईश्वर सर्वव्यापी होने पर भी किसी एक निर्दिष्ट स्थान में निष्क्रियावस्था में हैं।

८५. योगी का ध्यान मूलतः दो तरह का है– पहला, निर्लक्ष्य और दूसरा विशेष लक्ष्य।

तृतीय अध्याय
भक्तिमूलक उपदेशावली

१. ईश्वर के नाम–रूप–गुण श्रवण में मुग्ध होने का नाम **'पूर्वराग'** है। उन्हें पाने के लिए मन की आकांक्षा को **'अनुराग'** कहा जाता है। ईश्वर के प्रति जो परम अनुराग है उसे **'भक्ति'** कहा जाता है। ईश्वर के प्रति दर्शन के लिए हृदय की एकांतिक व्याकुलता को **'उत्कंठा'** कहते हैं।

२. ईश्वर पर आपकी जितनी निर्भरता बढ़ेगी मन की अशांति, भय आदि नकारात्मक भावनाएँ आपसे कोसों दूर चले जाएंगे।

३. सिर्फ प्रेम में ही सुख की प्राप्ति होती है, लेकिन प्रेम के बदले कुछ पाने की आशा से ही दु:ख मिलता है। किसीसे प्रेम करो तो बदले में उससे कुछ उम्मींद न रखो। प्रेम करना ही जिसका स्वभाव है वही असल में सुखी है।

४. ईश्वर अपने संतानों से खूब प्यार करते हैं लेकिन बदले में उनसे कुछ भी नहीं चाहते।

५. सच्चा भक्त कभी भी अपनी भक्ति को समझ नहीं सकता। भक्ति की भावना में डूबकर भक्त स्वयं को दूसरों से छोटा महसूस करता है, खुद को दीन हीन समझता है।

६. प्रेम स्वार्थरहित होना चाहिए। जिससे आपको सच्चा प्रेम हो भले वह आपके प्रति शत्रुता का आचरण क्यों न करें फिर भी आपके दिल में उसके प्रति कोई मलाल नहीं होनी चाहिए।

७. व्यष्टि के आधार पर प्रेम अगर सीमित रहता है तो उसे 'काम' कहा जाता है। इंसान स्वभाव से प्रेमी होने चाहिए। चाहे संसार के किसी भी कोने में रहे सभी के प्रति एक जैसा प्रेम होना चाहिए। यही प्रेम का लक्षण है।

८. इच्छामयी माँ की इच्छा के अलावा एक कदम भी आगे बढ़ने की हिम्मत किसी में नहीं है।

९. ईश्वर शांतिमय है, उन्हें प्राप्त करने पर या समझने से ही शांति मिलती है।

१०. जिसके प्रति प्यार है, उन्हें संभोग करने का नाम 'काम' है और स्वयं को भूलकर उनकी सेवा करने का नाम 'प्रेम' है।

११. ईश्वरप्रेमी कभी भी संसारप्रेमी नहीं हो सकता। इसके अलावा संसारप्रेमी भी कभी भी ईश्वर प्रेमी नहीं हो सकता।

१२. जो नयन ईश्वर के रूप दर्शन के लिये व्याकुल न होकर वाह्यजगत के सौंदर्य पर मुग्ध होता है उसका अंध होना स्वाभाविक है। जो जिह्वा ईश्वर प्रसंग में न रमकर परनिंदा में मशगुल रहना है उसका मूक होना स्वाभाविक है। जो कान सत्य सुनने में प्रवृत्त नहीं है उसका बहरा होना स्वाभाविक है। जो शरीर ईश्वर की सेवा में काम नहीं आया उसका पतन स्वाभाविक है।

१३. जो प्रेमी बने हैं उन्हें ईश्वर की प्राप्ति हुई है जिन्हें ईश्वर की प्राप्ति हुई है, वह स्वयं को भूल जाते हैं।

१४. जो ईश्वर के लिए उन्मत्त हैं, उन्हें ईश्वर समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने पर भी वह उसे ग्रहण नहीं करते।

१५. वही दीन है– जिसका सप्त स्वर्ग और धरती पर एक इंच भी स्थान नहीं।

१६. परमानंदस्वरूप ईश्वर के होते जो व्यक्ति स्त्री, पुत्र, धन, जमीन, जायदाद आदि कोरे विषयों में ही फंसा रहता है, उसे कैसा सुख मिलता है? और सत्य को न पहचानकर जो सिर्फ रतिसुख में डूबे रहते है, उन्हें इस संसार में कौन सुख प्रदान कर सकता है?

१७. ईश्वरप्रसंग की ओर नित्य अनुराग ही सच्चे ईश्वरप्रेम का लक्षण है।

१८. जैसे बर्षा के मौसम में वारिश होती है, बिजली चमकती है, फूल खिलते हैं, बादल हँसते है, हवा बहती है, चिड़ियाँ चहकती है ईश्वर प्रेमियों की भी हालत वैसी ही है। उनकी आँखो से आँसू बहती है, होठों पर हँसी झलकती है, हृदय में विरह की ज्वाला जलती है, खुशी से रोंगटे खड़े रहते हैं, और हर पल ईश्वर के गुणगान में ही डूबे रहते हैं।

१९. भगवत् दुनिया भावमय है, वहाँ शांत, दास्य, सख्य आदि भावों का मूर्तिमंत रूप देखने

को मिलता है। वहाँ के निवासी ईश्वर के ही सेवक हैं।

२०. साधना के बल पर षटचक्रों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन सप्तम चक्रभेद क्रिया पर निर्भर नहीं करता है। यह ईश्वर की कृपा पर निर्भर है।

२१. माँ जैसे अपने बच्चों का सारा दायित्व संभालती है वैसे ही ईश्वर अपने संतानों का भार सँभाल रहे हैं। उन पर आप अपना दायित्व सौंपकर कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ो।

२२. ईश्वर के रूप दर्शन से कभी भी किसी का मन नहीं भरा है। वह भक्तों को अपने रूप की सिर्फ एक झलक दिखा कर अदृश्य हो जाते हैं: ईश्वर के विरह में भक्त सालों तक तड़पता रहता है, इसी विरह की ज्वाला में ही उसके हृदय का सारा मैल जल जाता है और वह ईश्वर के दर्शन में पूर्ण सक्षम होता है – यही योगी का योग है।

२३. समुंदर के साथ जब नदी का संयोग होता है, भट्टा के समय समुंदर नदी का सारा जल अपने में मिला देता है– यह बात सच है लेकिन जब समुंदर में ज्वार आती है जल के स्रोत से उसके दोनों किनारे डूब जाते हैं। उसी तरह साधुमहात्माओं के संसर्ग से साधारण जीव की यही दशा होती है।

२४. दानवों के लिए कालीमाता करालवदनी किंतु अपने संतानों के लिए शांतिप्रदायिनी जननी रूपी है। शेरनी दूसरों के लिए चाहे कितना ही हिंस्र क्यों न हो लेकिन अपने शावकों के लिए स्नेहमयी जननी है।

२५. अपनों को कभी न्योता नहीं दिया जाता पराये लोगों को आमंत्रण किया जाता है। जो आपके अपने हैं वह सुख–दुःख में अपने आप ही आपके द्वार पर पहुँचते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रभास यज्ञ में त्रिलोकवासियों को निमंत्रण दिया था, लेकिन व्रजवासियों

को न्योता नहीं भेजा था। व्रजवासी बिना निमंत्रण के भी श्रीकृष्ण से मिलने आए थे। पिता नंद, माता यशोदा, प्रेममयी राधा तथा अन्य गोप–गोपीगण यज्ञस्थल पर द्वारपाल के द्वारा अपमानित हुए थे, फिर भी उन्हें कुछ फरक नहीं पड़ा। उन्हों ने न तो कृष्ण से नाराज हुए और न ही अभिमान किया यह दृश्य कितना ही मधुर और मनमोहक था। यही है अपने और पराये का इम्तिहान।

२६. अगर दीननाथ को पाना चाहते हो तो खुद दीन–हीन बनो। दीननाथ को पाने का यहीं एकमात्र उपाय है, जिसने आत्मसमर्पण किया वही असल में दीन–हीन है। सिर्फ लंगोट पहनकर भिक्षुक बनने से नहीं चलेगा।

२७. सिर्फ साधन–भजन में निमग्न रहकर संसार की उपेक्षा करना धर्म नहीं है। लेकिन ईश्वर के प्रेम करने के आदर्श में अगर संसार को प्यार कर सकते हो तो वही असल में धर्म

है। संसार–त्याग धर्म नहीं, आत्मत्याग ही धर्म है।

२८. संसार को भगवद् रूप से चाहने का नाम प्रेम है।

२९. भगवद् भक्ति के अलावा विद्या, धन, शारीरिक शक्ति, मानसम्मान सब कुछ तुच्छ है।

३०. इच्छामयी माँ किसी की भी इच्छा अपूर्ण नहीं रखती लेकिन इच्छा विशुद्ध और एकमुखी होना जरुरी है।

३१. दुश्मन का भला करके उसे हराया जा सकता है। प्रेम से ही सबको वशीभूत किया जा सकता है।

३२. ईश्वर प्रेम के अलावा शुद्ध आनंद की प्राप्ति कहीं भी संभव नहीं। अर्थात् ईश्वर के अलावा दूसरे से सुख की कामना करना वृथा मात्र है।

३३. इस संसार में हर एक का आवास गृह **गोकुल धाम** है, क्योंकि वहाँ भी शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर – यह पंचभाव विद्यमान है।

३४. हर एक परिवार को कैलास धाम भी कहा जा सकता है– यहाँ शिव–शक्ति का विकास है, गृह के स्वामी शिव और गृहिणी शक्ति हैं।

३५. ईश्वर के चरणों में आत्मसमर्पण करते ही आप ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो।

३६. सद्गुरु से आश्रय लेने के बाद भले ही आप कुछ भी करें लेकिन उन्हें त्याग न करें क्योंकि वक्त आने पर वह आपको अपनी राह पर खींच लेंगे।

३७. जैसे सुहागन औरत अपने पति का नाम होंठो पर नहीं लेती पर दिल में बसे पति का नाम सुनते ही उसका अंग–अंग खिल उठता है उसी तरह जिनके दिल में ईश्वर बसे हैं उनका रोम–रोम पुलकित हो उठता है।

३८. जिन्होंने ईश्वर के निकट आत्मसमर्पण किया है वही समझा है कि "मैं उनका हुँ और वह मेरे हैं।"

३९. भक्ति योग ही योगियों के ब्रह्मज्ञान सिद्धि का पथ है, इसके अलावा मंगलमय राह कोई दूजा नहीं है।

४०. हरि कथा श्रवण से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है उससे विषयों के प्रति विरक्ति का भाव पैदा होने के साथ आत्मा प्रसन्न होता है। इसी कारण यह साक्षात् मुक्तिपथ या भक्तियोग के नाम से जाना जाता है।

४१. हरि का नाम सुनकर जिनके हृदय में भक्ति का भाव, नयनों में अश्रु और अंगों में रोमांच नहीं होता, वह पत्थर की तरह कठोर हैं।

४२. हरि कथा के श्रवण से अगर दिल में भक्ति भाव का उदय नहीं होता तो वह संसार में धर्म नहीं कहलाता।

४३. वेदांत श्रवण के द्वारा साधक वैराग्य संवलित भक्तिलाभ करते हुए परमात्मा को स्वंय में देखता है।

४४. साधु की संगति श्रद्धा के साथ होनी चाहिए। पंडितों का कहना है– जो आसक्ति आत्मा के अक्षय बंधन स्वरूप है, वही अगर साधुओं के प्रति लागू करें तो वह मोक्ष प्राप्ति के द्वार स्वरूप होगा।

४५. जिसके माध्यम से शब्द–स्पर्शादि विषयों का अहसास होता है, अनंत लीलामय ईश्वर के प्रति उन सभी की जो स्वाभाविक वृत्ति है उसे ही **'निष्काम भगवत् भक्ति'** कहा जाता है।

४६. भक्तियोग नानाविध, खास मार्गो के द्वारा प्रकाशित होता है। स्वाभाविक वृत्ति भेद के अनुसार साधक की भक्ति का भी भेद होता है। हिंसा, क्रोध, दांभिकत्व, मात्सर्य

के द्वारा ईश्वर की जो भक्ति होती है, उसे **'तामसी भक्ति'** कहा जाता है। विषय, यश या ऐश्वर्य की कामना करते हुए प्रतिमा के आधार पर ईश्वर की जो भक्ति की जाती है उसे **'राजसी भक्ति'**, हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था रखते हुए कर्मफल समर्पण करते हुए जो भक्ति की जाती है उसे **'सात्विकी भक्ति'** कहा जाता है। ईश्वर के गुण श्रवण मात्र से फल की कामना न करते हुए भेद–दर्शन रहित होकर जो एकाग्र चित्त से ईश्वर का स्मरण करते हैं वह भक्ति **'निर्गुण भक्ति योग'** का लक्षण है।

४७. निर्गुण भक्तिकामी लोगों को यदि सालूक्य सर्ष्टि, सामीप्य तथा सायुज्य – यह समस्त भुक्ति भी भगवान देना चाहें तो भी वे ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होते है। ईश्वर–सेवा के अलावा वह अन्य कोई कामना नहीं रखते उस भक्ति योग को **आत्यंतिकी**

भक्ति कहा जाता है। इस भक्तियोग से त्रिगुण अतिक्रमण करते हुए ब्रह्मत्व की प्राप्ति की जा सकती है।

४८. ज्ञानी व्यक्ति गुरु को ही ईश्वर के रूप में स्वीकारते हुए ऐकांतिक भक्ति का साथ भजन करेंगे।

४९. जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति को लेकर जिसमें अहं का भाव नहीं होता वही ईश्वर के प्रिय है।

५०. कलियुग के मनुष्य ने युगानुरूप नाम और मूर्ति के द्वारा सर्वमंगलेश्वर मुक्तिदाता ईश्वर की उपासना करते हैं। गुणी और पंडितजन हमेशा कलिकाल का महिमा गान करते हैं। क्योंकि सिर्फ संकीर्त्तन के द्वारा ही इस युग में पुरुषार्थ की प्राप्ति की जा सकती है। इहलोक के भ्रमणशील इंसान के लिए ईश्वर की प्राप्ति का यही उत्तम मार्ग है। इससे सांसारिक

बंधनों से मुक्ति मिलती है। यहाँ तक की सत्युग के इंसान भी कलियुग में जन्म लेने की कामना करते हैं।

५१. जो भक्त यथोचित पवित्र होकर प्रातः और शाम ईश्वर के विभिन्न अवतारों का नाम स्मरण करते हैं वही इस दुःखसमुद्र रूपी संसार से मुक्त होने में सक्षम होते हैं।

चतुर्थ अध्याय

विविध उपदेशावली

१. ईश्वर के 'परमपद' की प्राप्ति के लिए चाहे कोई भी मतावलंबी क्यों न हो अर्थात् कर्म, ज्ञान और भक्ति आदि किसी भी पथ के अनुयायी क्यों न हो, सभी को ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास–इन चार आश्रमों से गुजरना होगा। यही सनातन धर्म का क्रम है।

२. सद्गुरु कहीं चिंतन शक्ति के द्वारा तो कहीं दर्शन के द्वारा तो कहीं स्पर्श के द्वारा अपने शिष्यों का आध्यात्मिक मंगल साधन करते हैं।

३. बारिश का पानी तरह तरह प्रणालियों से नदी के रास्ते सागर में गिर हैं। उसी तरह सौर, शैव, गाणपत्य, शाक्त, वैष्णव आदि सभी उपासक अपने अपने इष्ट की उपासना करते हुए अंत में सर्वव्याप्त ईश्वर (ब्रह्म)तक पहुँचते है।

४. योगी से अगर कोई अपराध हो तो वह ज्ञानाभ्यास और नाम संकीर्त्तनादि के द्वारा पाप से मुक्त हो सकते हैं।

५. जो व्यक्ति सन्यास धर्म का अवलंबन करते हुए भी इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर सका है और धर्म, आत्मा तथा परमात्मा का भेद नहीं समझ पाया, उस व्यक्ति का जीवन ही व्यर्थ है।

६. गृहस्थ का धर्म ब्रह्मचर्य, तपस्या, संतोष व जीव के प्रति श्रद्धा का पालन करना है।

वानप्रस्थी का धर्म सांसारिक बंधनों से मुक्त रहना है और सन्यासी का धर्म शांति तथा अहिंसा का पालन करना है। चाहे गृहस्थ हो, वानप्रस्थी हो या सन्यासी सभी का एक ही धर्म है, ईश्वर की उपासना।

७. व्याध के संगीत में मोहित होकर हिरन ब्याध के कवलित हो जाता है। इस से बनचर सन्यासी यह शिक्षा लेंगे कि उन्हें लोकगीत नहीं सुनना चाहिए।

८. आहार, निद्रा, मैथुन – पहले इन तीन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिए। अन्य इन्द्रियों को अपने वश में करने पर भी जो रसनेन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर पाया वह जितेन्द्रिय नहीं कहलाएगा।

९. गृहस्थ व्यतिरेक ब्रह्मचारी नारी प्रसंग नहीं करेंगे, क्योंकि इन्द्रियसमूह मूनियों का भी

मन हरण करते हैं। नारी घृत की तरह और पुरूष अग्नि की तरह है। निर्जन में पिता को भी अपनी युवती–पुत्री के साथ अवस्थान करना निषिद्ध है।

१०. अजितेन्द्रिय व्यक्ति मायारूपिणी नारी के संसर्ग में आते ही उसके हावभाव से प्रभावित होकर आग में कूदने की तरह नरक में जा गिरता है। इसीलिए साधक को अपनी साधना के लिए संकल्पबद्ध होना चाहिए।

११. मन को अपने वश में करनेवाला ही जगत विजयी कहलाता है। वही सच्चा वीर, धीर, पंडित और समदर्शी है जो कामिनी यानी माया के कटाक्ष से मोहित नहीं होते।

१२. सच्चाई तो यह है कि जिसका पुनर्जन्म नहीं होता असल में उसका ही 'जन्म' (जात)

हुआ है। जिसकी पुनर्वार मृत्यु नहीं होती उसे ही 'मृत' माना जाता है।

१३. स्त्री–पुत्र आदि पारिवारिक सदस्य जो अपने होते हैं कभी कभी यही लोग मित्ररूपी दुश्मन हैं।

१४. जो समाधियुक्त है वही चैन की नींद सोते हैं। जो सत् व विवेकी है वह जाग्रत हैं।

१५. मनुष्य की इन्द्रियों ही उसकी दुश्मन है, लेकिन इन्द्रियों को अगर अपने वश में करेंगे तो यही इन्द्रियों अपनी मित्र बन जाती है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

१६. विषयों के प्रति निरंतर अनुरक्त रहनेवाला व्यक्ति हमेशा अनेक बंधनों में जकड़ा रहता है। वह वद्ध है। इसके विपरीत जो व्यक्ति विषयों से विरत रहता है वह 'बंधनरहित' या विमुक्त है।

१७. विषयों के प्रति जिसे जितनी तड़प होती है वह उतना बड़ा दरिद्र कहलाता है।

१८. इस संसार में रमणी ही प्राणियों का बंधन स्वरूप है। वे ही विज्ञ से विज्ञतम है, जिसे अविद्यारूपिणी रमणी बन्धन में नहीं डाल सकती है।

१९. ज्ञानी लोग मृत्यु नजदिक आने पर यदि प्रयत्नपूर्वक शरीर, मन और शब्द से सर्वसुखप्रदाता, यमविजेता मुरारी के चरणकमल की चिंता करेंगे तो निश्चित रुप से उनका मृत्यु का भय दूर होगा।

२०. जब तक कर्मफल के प्रति कोई अरुचि उत्पन्न न हो या ईश्वर का स्तुतिगान करने या सुनने में श्रद्धा उत्पन्न न हो तब तक उस प्रवृत्ति को करते रहो।

२१. जब भागवत सेवा द्वारा समस्त अमंगल नष्ट होंगे तभी अविरल श्रद्धा व निश्चला भक्ति भगवान के प्रति उत्पन्न होगी। तत्पश्चात वासना, लोभ आदि राजसी व तामसी गुण सहज मन में प्रविष्ट नहीं हो पाएँगे। अत: सत्वगुण युक्त 'अंत:करण' में हमेशा प्रसन्नता प्राप्त होगी।

२२. जब तक साधक के मन में श्रद्धा युक्त व ईर्षामुक्ति नहीं होता तब तक वह ब्रह्म को नहीं समज पाता। अत: उन्हें स्वयं गुरुदेव में अनंतप्रेम व श्रद्धा रख उनकी सेवा करनी चाहिए।

२३. जो लोग संसार के सुख–भोग का त्याग करना चाहते है, उन्हें अपने मन पर धीरे–धीरे नियंत्रण कर भक्ति, योग व वैराग्य में प्रवृत्त रहना चाहिए।

२४. जो लोग सहज रुप से स्वीकार करते हैं कि वे 'परतत्व' ब्रह्म को नहीं पहचानते वहीं वास्तव में उन्हें पहचानते है। किन्तु यह दावा करते हैं कि वह ब्रह्म को पहचानते हैं वे वास्तव में उनसे अज्ञात है। ब्रह्म उन लोगों से भी अज्ञात है जो यह दावा करते हैं कि वे कुछ भी नहीं जानते–प्रथम दृष्टि से विरोधाभास दिखता है, वास्तव में यह एक सही विधान है। जो बुद्धिमान है उसके लिए ज्ञान और ज्ञानी दोनों अलग है, ब्रह्म भी अज्ञात हैं। किन्तु हो बुद्धिमान ज्ञान और ज्ञानी को बिना किसी भेदभाव के एक ही मानते है, वे ब्रह्म को जानते है यह एक ऐसा विधान है जो समज से परे है, यह ज्ञान भी नहीं है और अज्ञान भी नहीं है।

२५. मन का स्थिर होना, लय होना अर्थात् मनोलय होना यही मुक्ति है।

२६. सामान्यता: लोग दु:ख की स्थिति में ईश्वर को याद करते है व उनके नाम का पठन–स्मरण करते हैं तथा भगवान जब उनके कष्टो को दूर कर देते हैं तत्पश्चात् वे इश्वर को भूल जाते हैं। किन्तु अज्ञान लोग यह नहीं जानते कि विपत्ति की परिस्थिति में ईश्वर को याद करने की वजह से ही वे विपरीत परिस्थिति से सुरक्षित हो पाए थे। यदि वे उन्हें सुख के समय में याद रखें तो उन्हें कभी भी किसी विपत्ति या विकट परिस्थिति का सामना नहीं करना पडेगा।

२७. जैसे हिरन अपना नाभि स्थित कस्तूरी की मीठी सुगंध से मंत्रमुग्ध बन, सुधबुध खोकर

उसकी प्राप्ति हेतु जंगल में भागने लगते है और शिकारी का शिकार बन जाते है, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति हृदय में स्थित आत्मानंद का आनंद न लेकर भ्रमवश विषयांतर होकर सुख की प्राप्ति हेतु यहाँ–वहाँ भागने लगता है और मोहमाया में फँस जाता है।

२८. भगवान को लक्ष्यरुप में ग्रहण न कर वेद, पुराण, उपनिषद आदि धर्मिक शास्त्रों को पढना व सुनना अर्थहीन है; क्योंकि शास्त्रार्थ ज्ञानप्रभा द्वारा भगवान के स्वरुप से अवगत होना ही वेद, पुराण, उपनिषद आदि का प्रमुख उद्देश्य है।

२९. जो सुख व संपत्ति ईश्वर से दूर करती है वह तुच्छ है, किन्तु जो दु:ख ईश्वर के समीप ले जाता है वह प्रशंसनीय है।

३०. माया से आवृत्त होकर सुख तथा भोग की लालसा हेतु घृणाजनक नर्क–रथ पर आरुढ न हो।

३१. उपलब्धि के विषय को भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते, मात्र उसका अनुभव कर सकते है, किन्तु अविश्वासी हृदय उस पर विश्वास नहीं करेगा।

३२. कारणावस्था तक पहुँचने पर मन नष्ट हो जाता है अर्थात मन की कोई क्रिया–अवस्था नहीं रहती, फिर भी अनुभूति नष्ट नहीं होती, उसमें निरंतर वृद्धि होती रहती है। अनुभूति की स्वरुपावस्था 'कारण' है अर्थात मनोलय के साथ अनुभूति का कभी भी लय नहीं होता ।

३३. विश्वास व धैर्य ही साधना मार्ग के सहायक है।

३४. आप किसी भी मार्ग का अनुसरण करें किन्तु यदि आपको सत्य के प्रति अनुराग है तो आप निश्चित रुप से सत्य की प्राप्ति कर सकते हो।

३५. जो भी निर्मित होनेवाला है वह होगा ही, ईश्वर ने वह पहले से निर्धारित किया ही है। सीता जी का जो अपहरण हुआ वह भी पूर्व निर्धारित ही था।

३६. मात्र विभूति दर्शन को प्राप्त करने की अपेक्षा जीवन में उच्च संस्कार को ग्रहण करे, उसका मूल्य अधिक है।

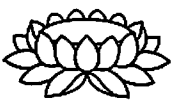

दिल्ली सारस्वत संघ
एन– 22–25, हरगोविन्द एनक्लेव, राजपुर खुर्द
छत्तरपुर, नई दिल्ली–110068
Email : info@delhisaraswatsangh.org
Website : delhisaraswatsangh.org